भारत-स्वातन्त्र्य-स्वर्णजयन्ती-ग्रन्थमाला-39

प्राचीन भारत का संविधान तथा न्याय-व्यवस्था

(CONSTITUTION & JUDICIAL SYSTEM OF ANCIENT INDIA)

डॉ० कृष्णकुमार आयुर्वेदालंकार

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
मानितविश्वविद्यालयः
नवदेहली

आमुख

वर्तमान समय में भारतीय विधि तथा न्याय व्यवस्था के अत्यधिक जटिल, व्ययसाध्य तथा विलम्बशील होने के कारण अनेक बार यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कोई ऐसी प्रणाली या प्रक्रिया हो सकती है, जो जन-साधारण को समुचित तथा सरल रूप से विधि का ज्ञान करा सके, तथा शीघ्र एवं स्वल्प व्यय के साथ न्याय दिला सके।

इसके लिये हमको प्राचीन संविधान तथा न्याय व्यवस्था का ज्ञान होना आवश्यक है। यह ज्ञान हमको - वैदिक साहित्य, वेदांग, सूत्र-ग्रन्थों, स्मृति शास्त्रों, 'रामायण', 'महाभारत', पुराणों तथा अन्य अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों, संस्कृत काव्य आदि के अध्ययन से ही हो सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया था कि कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय करने में तुम्हारे लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं। शास्त्रों के कहे गये कर्म को तुम्हें इस संसार में करना चाहिये।[1]

प्राचीन भारतीय मनीषियों का ध्येय और आदर्श था कि अधर्म का विनाश करके धर्म की स्थापना की जावे। अपराध का होना ही अधर्म है। अतः अपराधों के अस्तित्व का न्याय द्वारा विनाश करके धर्म की स्थापना करनी चाहिये। अतः प्राचीन मनीषियों ने न्याय की स्थापना को ही धर्म माना था।

अपराध क्यों होते हैं ? इसके पीछे मानसिकता क्या है। अपराध का मूल कारण अरिषड्वर्ग (काम-क्रोध-लोभ-मोह-

---

1 तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।
भगवद्गीता-16.24

दण्ड हो तथा उसके समान ही मूल्य का जुर्माना हो।

कौटिल्य और कात्यायन का भी मत है कि उपनिधि को बदलने या नष्ट करने पर उसके मूल्य के बराबर दण्ड देना चाहिये।[48]

यदि कोई निक्षेप साक्षी के सामने रखा गया है, तो विवाद के उपस्थित होने पर साक्षी के कथन के अनुसार ही निक्षेप का मूल्य समझा जाना चाहिये। इसके विरुद्ध कथन करने वाला न्यायालय द्वारा दण्डनीय होता है।[49]

उपनिधि द्वारा कपट से दूसरों के धन का हरण करने वाले को राजा सर्वजन के समक्ष ही अनेक प्रकार के शारीरिक दण्ड देता था। ये दण्ड थे - हाथ-पैर कटवा देना, जंजीरों से बंधवाना, कोड़े या बेंतों से पिटवाना आदि। उसका वध भी किया जा सकता था।[50]

3. अस्वामिविक्रय

अस्वामिविक्रय विवाद का अभिप्राय है कि किसी वस्तु का स्वामी न होने पर भी उस वस्तु को अपनी बता कर उसका विक्रय कर देना। यह कार्य स्वामी की उपस्थिति में भी किया जा सकता है और स्वामी की उपस्थिति न होने पर भी किया जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी वस्तु का स्वामी न होने पर भी उस वस्तु को जानबूझ कर या विना जाने बेचने वाला व्यक्ति अपराधी है। उसको चोर के समान दण्ड दिया जाता है।

दूसरे की वस्तु, जो धरोहर के रूप में रखी गई हो, दूसरे की वस्तु, जो कहीं पड़ी मिल गई हो या अपहरण कर ली गई हो, उसके स्वामी के पीछे ही बेच ली जावे, तो वह भी अस्वामिविक्रय ही है।[51]

मनु का कथन है कि जो व्यक्ति किसी वस्तु का स्वामी न होते हुये भी उस वस्तु का विक्रय कर देता है, वह व्यक्ति

47. वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमत:।
राजन्यवैश्यशूद्राणां त्यजतां हि स्वतन्त्रताम्। कात्यायन स्मृति 716

48. प्रव्रज्यावसितो राज्ञो दासमामरणान्तिकम्।।
याज्ञवल्क्य स्मृति 2.183

49. बलाद् दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते।।
याज्ञवल्क्यस्मृति 2.182

50. भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधना: स्मृता:।
यत् ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्।। मनुस्मृति 8.416

51. दासस्य धनं यत् स्यात् स्वामी तस्य प्रभु: स्मृत:।
प्रकाशं विक्रयात् यत् तु न स्वामी धनमर्हति।
कात्यायन स्मृति 724

52. आदद्याद् ब्राह्मणी यस्तु विक्रीणीते तथैव च।
राज्ञा तदकृतं कार्य दण्ड्या: स्यु: सर्व एव ते।।
कात्यायन स्मृति 726

53. कामात्तु संश्रितां यस्तु दासी कुर्यात् कुलस्त्रियम्।
संक्रामयेत वाऽन्यत्र दण्ड्यस्तच्चाकृतं भवेत्।।
कात्यायन स्मृति 727

54. विक्रोशमानां यो भक्तां दासी विक्रेतुमिच्छति।
अनापदिस्थ: शक्त: सन् प्राप्नुयाद् द्विशतं दमम्।।
कात्यायन स्मृति 729